

जैन नास्तिक नहीं है

- देवेन्द्र कुमार जैन

एडवोकेट

‘जैनों’ के अनुसार भगवान महावीर ने कोई नया धर्म नहीं चलाया। उन्होंने जो कुछ बताया वह सदा से है, सनातन है। उन्होंने धर्म की स्थापना नहीं की बल्कि धर्म में खोई आस्था को फिर से कायम किया। महावीर की तरह भगवान ऋषभदेव भी जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे। ऋषभदेव को धर्म-संस्थापक मान लेने से जैनों की काल-संबंधी अवधारणा गड़बड़ा जाती है। कालचक्र की अवधारणा के कारण जैन अपने आपको सनातनी मानते हैं। इस समझ के अनुसार तीर्थंकरों की अनंत चौबीसियां इस भरत क्षेत्र में हो चुकी है और वे भविष्य में भी होती रहेंगी। ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के पहले तीर्थंकर है। और महावीर अंतिम, किन्तु ऋषभदेव से पूर्व भी अनंत तीर्थंकर हो चुके हैं और महावीर के बाद भी उत्सर्पिणी काल में तीर्थंकर होते रहेंगे। तीर्थंकरों की यह परंपरा अनादि और अनंत है।

जैन परंपरा में त्रिषंवित शलाका पुरुषों का वर्णन मिलता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामक सुदीर्घ कालखंड में ६३ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं जो समय-समय पर जोगी को धर्म की प्रेरणा देते हैं। कालचक्र के परिवर्तन में आने वाले उतार चढ़ाव को जैन परिभाषा में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम से जाना जाता है। उत्सर्पिणी काल में प्राणियों के बल, आयु और शरीरादि का प्रमाण क्रमशः बढ़ता जाता है। इन कालों में होने वाले २४ तीर्थंकर १२० चक्रवर्ती, ६ प्रतिनारायण और ६ बलभद्र मिलकर त्रैसठ शलाका पुरुष कहलाते हैं।

जैन मान्यता के अनुसार मौजूदा काल अवसर्पिणी काल का पंचम कालखण्ड है। इस काल में शलाका-पुरुषों की उत्पत्ति नहीं होती। पहले, दूसरे और तीसरे काल-खंड में भी महापुरुष नहीं होते क्योंकि इन कालों में भोगों की ही प्रधानता रहती है।

पहले, दूसरे और तीसरे काल में क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य भोग भूमि की ही प्रधानता रहती है। इनमें आध्यात्मिक उन्नति के अवसर नहीं रहते। चौथे काल में कर्मभूमि का आरंभ होता है और इसी कर्मभूमि से मोक्षमार्ग का प्रवर्तन होता है।

त्रैसठ शलाका पुरुषों की उत्पत्ति चौथे काल में ही होती है। इन शलाका पुरुषों में २४ तीर्थकरों का नाम सर्वोपरि है। भगवान ऋषभदेव सबसे पहले तीर्थकर थे। वे अयोध्या के इश्वाकुवंशी राजा नाभिराय के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के बाद वे राजगद्दी पर बैठे। भोग-भूमि की समाप्ति हो जाने से इन्होंने अपनी प्रजा को असि, मसि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प-इन षड्कर्मों से आजीविका करना सिखाया। लोगों को कर्म की ओर प्रवृत्त करने के कारण उन्हें प्रजापति, ब्रह्मा, विधाता, आदि पुरुष आदि नामों से भी पुकारा गया है।

जैनों के अंतिम तीर्थकर भगवान महावीर हैं। बिहार प्रांत के कुंडलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के घर उनका जन्म हुआ। भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। जैन मान्यता के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ के समय में वृक्षों पर लटकने, पंचाग्नि तापने और लोहे के कांटों पर सोने जैसी तामसी तपस्याओं का प्रचलन काफी बढ़ गया था। भगवान पार्श्वनाथ ने इन तामसी तपस्याओं के स्थान पर ध्यान, धारणा, समाधि, उपवास-अनशन जैसी सात्विक तपश्चर्या का अवलंबन किया। उन्होंने इस सात्विक तपश्चर्या की भी मर्यादा निश्चित की थी। समाधि में विघ्न डालनेवाली अमर्यादित तपश्चर्या उन्हें मंजूर नहीं थी। भगवान महावीर ने भी भगवान पार्श्वनाथ का अनुसरण करते हुए मर्यादित तपस्या के द्वारा मोक्ष प्राप्त किया था।

भगवान महावीर की तपस्या का रहस्य संयम में है। उन्होंने प्राणि-मात्र से मैत्री-भाव रखने, अपनी आवश्यकताओं को कम से कम बनाए रखने और मात्र उसी प्रवृत्ति को स्वीकार करने पर जोर दिया जो जीवित रहने के लिए अनिवार्य हो। इस अनिवार्य प्रवृत्ति में भी वे किसी प्रकार के प्रमाद की गुंजाइश नहीं छोड़ते। उनका निवृत्ति मार्ग यही है कि अपने शारीरिक व्यवहार को इतना घटा दिया जाए कि दूसरों को बिलकुल कष्ट न हो।

आम तौर पर जैन-धर्म का वेद, ब्राह्मण और वर्णाश्रम विरोधी धर्म के रूप में चित्रित किया जाता है। तीर्थकर होने के बाद भगवान ने जो पहले शिष्य बनाए वे सब

ब्राह्मण ही थे। उस जमाने में इन ब्राह्मणों का ज्ञान वेदों के केवल लौकिक अर्थ तक ही सिमट कर रह गया था। भगवान महावीर ने उन्हें पारमार्थिक धर्म का मर्म समझाया। यज्ञ, यज्ञ-कुंड, सामिधा, आहूति आदि की विवेचना कर उन ब्राह्मणों को नए सिरे से इनका अर्थ समझाया। उन ब्राह्मणों को अपनी ऊंची जाति का विद्वता का अभिमान हो गया था। भगवान के दर्शन करने से उनका यह अभिमान जाता रहा। भगवान महावीर की वाणी का जिन गणधरों ने संकलन किया वे तमाम गणधर वेद-वेदांगी में निष्णात ब्राह्मण पंडित ही थे। गणधरों द्वारा संकलित भगवान की वाणी ही जैन आगम के नाम से प्रसिद्ध है, इसे ही जैन सम्यक श्रुति कहते हैं।

भगवान महावीर की देशना में मानव और मानव के बीच, विभिन्न वर्णों के बीच ऊंच-नीच के लिए कोई जगह नहीं है। उनके अनुसार वही सच्चा ब्राह्मण है जो अपने आपको राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, और हास्य-भय से दूर रखता है, सब जीवों में समभाव धारण करता है, जो ब्रह्मचर्य और अकिंचन व्रत का पालन करता है। भगवान महावीर लोगों को ऐसे ब्राह्मण के सान्निध्य में रह कर चिंतन, मनन और निर्दिध्यासन के द्वारा आत्म साक्षात्कार करने का उपदेश देते हैं। भगवान महावीर ने क्षत्रियों को पराया माल हड़पने और आपसी कलह ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता से विरत होने की शिक्षा दी। उन्होंने उन्हें वैर-प्रतिवैर की भावना खत्म करने और जितेन्द्रिय बनने का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि असली क्षात्र-धर्म निर्दोष प्राणियों का बध करना नहीं है, बल्कि जीवों की रक्षा करना है। उन्होंने क्षत्रियों को क्रोध पर क्षमासे, मान पर नम्रता से, यात्रा पर ऋजुता से और लोभ पर निर्मोह से जीत हासिल करने का मार्ग दिखलाया। उन्होंने बताया कि अहिंसक-युद्ध में ही समस्त जीवों का उद्धार निहित है।

उनके उपदेश से प्रभावित होकर वीरांगक आदि आठ समकालीन राजाओं ने प्रवज्या ग्रहण की थी। अभयकुमार, मेघकुमार जैसे राजकुमारों ने घर-बार छोड़कर साधना का मार्ग अपनाया था। उनके गृहस्थ अनुयायियों में मगधराज श्रेणिक और कुणिक, वैशालीपति चैटक, अवन्ति नरेश, चंद्रप्रद्योत आदि मुख्य थे। आनंद आदि वैश्य, शकडाल-पुत्र जैसे कुम्हार और अर्जुन माली जैसे लोग भी भगवान के द्वारा निर्दिष्ट धर्म-मार्ग में प्रवृत्त हुए थे। उनके विहार के मुख्य क्षेत्र मगध, विदेह, काशी, कौशल और वत्स देश थे।

भगवान महावीर ने वैश्यों को बताया कि वैभव न्याय-युक्त हो, इतना ही काफी नहीं है। वैभव का परिमाण और मर्यादा भी निश्चित होनी चाहिए। उन्होंने वैश्यों को न्याय मार्ग पर चलने, मर्यादा पूर्वक धनोपार्जन करने और अंत में सब कुछ त्याग कर अकिंचन व्रत पालन करने का उपदेश दिया। शुद्रों के लिए उनका उपदेश था कि अच्छे कर्म करने से वे भी ब्राह्मणों के समान पूज्य बन सकते हैं।

भगवान महावीर ने यज्ञ-मार्ग का निषेध नहीं किया था, बल्कि यज्ञ में होने वाली हिंसा को छोड़ने का उपदेश दिया था। उन्होंने तपस्या रूपी यज्ञ में पाप-कर्मों को जला देने का आवाहन किया। उनके अनुसार जीवात्मा ही अग्निकुंड है, मन वचन कार्य की प्रवृत्ति ही है। भगवान महावीर से पहले आरण्यक ऋषियों में यज्ञ-यागादि अनुष्ठान सांसारिक सुख के लिए अनुपादेय है, यह धारणा प्रचलित थी। ये आवश्यक ऋषि सांसारिकता से दूर गहन तपस्या में लीन रहते थे और किसी अज्ञात गुफा में छिपे गूढ़ धर्म तत्व की खोज में लगे रहते थे। भगवान महावीर ने उस गूढ़ धर्म-तत्व को आम लोगों के बीच ले जाकर सर्वोदय तीर्थ का प्रवर्तन किया। उनके उपदेशों से बाह्याचार की बजाय ध्यान, स्वाध्याय, विनय, सेवा आदि नाना प्रकार की तपस्याओं का धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में प्रचार हुआ।

ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीसों तीर्थकरों के जीवन-चरित्र जैन साहित्य में उपलब्ध होते हैं, परंतु ऋषभदेव के मुकाबले बाकी तीर्थकरों के जीवन चरित्र काफी छोटे हैं, यहां तक कि नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्र भी जिनका अन्य तीर्थकरों की अपेक्षा कहीं अधिक विवरण मिलता है। जैन पुराणों के अनुसार चक्रवर्ती संपूर्ण भरत-क्षेत्र के छहों खंडों का एकाधिकार प्राप्त सम्राट होता है, जिसके अंतर्गत बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा होते हैं। उसे नवनिधि और चौदह रत्न प्राप्त होते हैं। उसकी सेना में चौरासी करोड़ योद्धा, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी और उतने ही रथ होते हैं। जैन लोग सम्राट भरत को इस युग का प्रथम चक्रवर्ती मानते हैं। भरत चक्रवर्ती भगवान ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इसके प्रमाण में जैन श्रीमद् भागवतपुराण को उद्धृत करते हैं। भागवत के अनुसार महायोगी भरत ऋषभदेव के सौ पुत्रों में सबसे बड़े थे। और उन्हीं के कारण यह देश भारतवर्ष कहलाया।

आधुनिक लेखकों की इस राय से जैन लोग कतई सहमत नहीं हैं कि जैन-धर्म की उत्पत्ति ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध असंतोष की भावनाएं फैल जाने के कारण हुई। पश्चिमी

विद्वानों के जैन धर्म को समझने की प्रक्रिया के साथ-साथ इस धारणा की शुरुआत हुई थी, जिसका थोड़ा बहुत असर परंपरावादी जैनो में भले ही हुआ हो, परंतु परंपरावादी जैन न तो जैन-धर्म को ब्राह्मण-धर्म विरोधी मानते हैं और वह न ही भगवान ऋषभदेव या महावीर को जैन धर्म का संस्थापक। अपनी तीर्थंकर परंपरा के वेदों और पुराणों में उल्लेख होने का जिक्र वे बड़े गर्व के साथ करते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि यजुर्वेद में जो ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि का निर्देश मिलता है, वे वस्तुतः जैन तीर्थंकर ही हैं। इसी तरह भागवत पुराण में वर्णित ऋषभदेव को प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से अभिन्न मानते हैं। महाभारत में विष्णु के सहस्र नामों में त्रेयासं, अनंत, धर्म, शान्ति और संभव और शिव के नामों में ऋषभ, अजित, अनंत और धर्म का जो उल्लेख मिलता है, वह जैनो के अनुसार तीर्थंकर परंपरा का ही उल्लेख है।

जैनो की अहिंसा को लेकर अक्सर यह गलतफहमी रहती है कि उनकी अहिंसा ने समाज को कमजोर बना दिया था उस अहिंसा के चलते जैन लोगों ने कुएँ खुदवाने, तालाब बनवाने जैसे लोकोपकारी काम करने बंद कर दिए। यह भ्रांति जैनो की अहिंसा संबंधी धारणा को न समझने के कारण पैदा होती है। जैन हिंसा के चार भेद करते हैं (1) संकल्पी, (2) उद्योगी, (3) आरंभी, (4) विरोधी। निर्दय परिणाम को हेतु बनाकर संकल्प पूर्वक किया गया प्राणघात संकल्पी हिंसा है। व्यापार या गृहस्थी के कामों में सावधानी बरतते हुए भी जो हिंसा हो जाती है वह उद्योगी और आरंभी हिंसा है। अपने तथा अपने परिवार, धर्मायतन, समाज देशादि पर किए गए आक्रमण से रक्षा के लिए की गई हिंसा विरोधी हिंसा है।

श्रावक या गृहस्थ इन चार हिंसाओं में से पहली संकल्पी हिंसा का ही सर्वथा त्यागी होता है। इसलिए जैनो के अनुसार गृहस्थ जीवन के लिए अनिवार्य आरंभी, उद्योगी और विरोधी हिंसा और हिंसा भाव छोड़कर बाकी हिंसा का पूरी तरह त्याग करना ही अहिंसा अणुव्रत है। इसका उद्देश्य गृहस्थी को अमर्यादित भोग-सामग्री इकट्ठा करने के लिए की जाने वाली हिंसा को रोकना है, परंतु जीवन की जरूरी आवश्यकताओं के जुटाने, या प्राणरक्षा के निमित्त की गई हिंसा की छूट जैन धर्म श्रावकों को देता है। परंतु यह छूट जैन साधुओं के लिए नहीं है, वे अहिंसा महाव्रत का पालन करते हैं। उन्हे चारों हिंसाओं में से किसी एक भी हिंसा की अनुमति नहीं है। इस प्रकार जैन साधु का जीवन ही पूर्ण

अहिंसक और अपरिग्रही होगा, परंतु गृहस्थ के लिए अहिंसा महाव्रत या अपरिग्रही महाव्रत का पालन करना संभव नहीं है। गृहस्थ प्राणघात का संकल्प करके एक चींटी भी नहीं मारेगा, परंतु घर-बार, देश-समाज, धर्म या धर्मायन पर आक्रमण होने की स्थिति में तलवार उठा कर पूरी शक्ति के साथ लड़ेगा। इस तरह की लड़ाई करते हुए श्रावक के अहिंसाणुव्रत की कोई हानि नहीं होती है।

भगवान-महावीर की अहिंसा की तरह उनके द्वारा बताया गया निवृत्ति मार्ग भी देश, जाति या समाज के उत्थान के लिए किए जाने वाले कामों या लोकमंगल के कार्यों में कोई बाधा नहीं डालता, यहां तक कि यह निवृत्ति मार्ग लोगों को बेहतर जीवन-यापन करने की प्रेरणा देता है। यदि निवृत्ति मार्ग प्रवृत्ति में बाधक होता तो स्वयं भगवान महावीर क्यों लोक-कल्याण की ओर प्रवृत्त होते। वे तो मुक्त जीवन थे और केवल ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। उन्हें जगह-जगह विहार करके संसारी जीवों को उपदेश देने की कोई जरूरत नहीं थी। परंतु केवल ज्ञान के वाद उन्होंने इसलिए लगातार देशना की ताकि अन्य जीवों का भी कल्याण हो सके। इसलिए उनको तीर्थकर कहा जाता है। उन्होंने न केवल खुद भव-सागर पार कर लिया था, बल्कि दूसरों को भी इसके पार जाने का रास्ता दिखलाया। दूसरों को मार्ग दिखाने के कारण ही तीर्थकर कहा जाता है। भगवान महावीर की अहिंसा या उनका निवृत्ति मार्ग यदि राजकाज और समाज के कामों में बाधक होता तो जैन धर्म का राजाओं के बीच इतना असर नहीं होता। जैन धर्म का उत्तर और दक्षिण के राजाओं पर काफी असर रहा है। बैशाली के राजा चैटक, मगध के राजा श्रेणिक, मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त, सम्राट अशोक के पौत्र संप्रति, कलिंग चक्रवर्ती खारवेल और कलचुरि नरेश जैन धर्म के अनुयायी थे ही, राष्ट्रदूत और चालुक्य राजाऔ, चौल और पांडेय नरेशों, गंगवंश और होमसल वंश के राजाऔ और विजय नगरराज्य में भी जैन धर्म की काफी ख्याति रही है।

जैनाचार्यों और साधुओ द्वारा रचित ग्रंथों को देखकर भी यह धारणा पक्की हो जाती है कि जैनों की निवृत्ति का सामाजिक प्रवृत्ति पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ा था। जैनाचार्यों के गणित, रत्नशास्त्र, आयुर्वेद पर तो ग्रंथ हैं ही, अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, मुद्राशास्त्र, धातुविज्ञान और प्राणिविज्ञान पर आपको उनके लिखे ग्रंथ मिल जाएंगे। कला, संगीत और नाटक जैसी विद्याएं भी जैनाचार्यों से अछूती नहीं रहीं। व्याकरण, कोश, अलंकार और छंद पर हजारों ग्रंथ जैन साधुओं और आचार्यों ने

लिखे है। भारतीय साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विद्या हो जो जैनाचार्यों से अछूती रही हो। यहां तक कि कामशास्त्र जैसे विषयों पर आपको जैनाचार्यों के ग्रंथ मिल जाएंगे।

भगवान महावीर और उनके बाद की समग्र जैन परंपरा भारतीय परिस्थितियों में ही काम कर रही थी। जैन धर्म के आचार, उनके साधु-संतो की परंपराएं और जैनों द्वारा रचे गए साहित्य का अध्ययन करने से आपको पता चल जाएगा कि जैन धर्म कितना अधिक भारतीय मूलधारा से जुड़ा हुआ है। जैन दर्शन की तात्त्विक मान्यताओं या ईश्वर को न मानने को लेकर उनके वेद विरोधी स्वरूप को बढ़ा-चढ़ा कर चित्रित कर उन्हें नास्तिक बतला कर भारत की मूलधारा से कभी भी नहीं काटा जा सकता। जैन लोग इस तरह के विवेचन से कभी सहमत नहीं होंगे।

जैन भगवान राम और लक्ष्मण को त्रेसठ-पुरुषों में गिनते हैं। भगवान राम यद्यपि तीर्थंकर नहीं हैं, परंतु तीर्थंकर की तरह ही पूज्य हैं। जैन परंपरा भगवान राम और हनुमानजी को पूर्ण ज्ञानी और पूर्ण वीतरागी मानती है। जैन-साहित्य में भगवान राम का विशद विवरण है। कई तीर्थंकर ऐसे हैं जिन पर स्वतंत्र रूप से कोई पुराण या महाकाव्य नहीं मिलेंगे। भगवान राम की तरह भगवान बाहुबलि भी तीर्थंकर नहीं हैं, फिर भी सर्वज्ञ और वीतरागी होने के कारण परम पूज्य हैं, श्रवण वेलगोल में उनकी विशाल प्रतिमा का पूरे भारतवर्ष में काफी नाम हैं। भगवान बाहुबलि की तरह भगवान राम और हनुमान जी भी परम पूज्य हैं।